जीवन और मृत्यु के बाद का जीवन

द्वारा

एनी बेसेंट

दिसम्बर, 1914

थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस

अडयार, मद्रास, भारत

"धन से तुम्हारा क्या संबंध है? संबंधियों से तुम्हारा क्या संबंध है? पत्नी से तुम्हारा क्या संबंध है? हे मृत्यु को निश्चित रूप से प्राप्त होने वाले मनुष्य! उस आत्मा की खोज करो, जो हृदय-गुहा में छिपी हुई है। तुम्हारे पिता कहाँ चले गए? और तुम्हारे पिता के पिता कहाँ चले गए?"

यह प्रश्न महान ऋषि **व्यास** ने **शुक** से पूछा था। यही वह प्रश्न है जिसे मनुष्य युग-युगांतर से स्वयं से और एक-दूसरे से पूछता आया है—जब से मनुष्य जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है।

मनुष्य अपने आप से पूछता है—जीवन के समस्त सुखों का क्या उपयोग है? वैभव से प्राप्त होने वाले सभी ऐश्वर्य का क्या लाभ है? शक्ति और यश का क्या अर्थ है, यदि इन सबका अंत निश्चित है, यदि मृत्यु इन्हें हमारे हाथों से छीन लेती है?

इस प्रकार हर काल और हर युग में मनुष्य ने पूछा है—**जन्म क्या है और मृत्यु क्या है?**

हम इस संसार में आते हैं और फिर इसे छोड़कर चले जाते हैं। कुछ समय के लिए हम यहाँ रहते हैं, परंतु सब कुछ परिवर्तनशील है। जिन वस्तुओं को हम सबसे अधिक मूल्यवान समझते हैं, वे हमारे हाथों से फिसल जाती हैं। जिनसे हमारा हृदय गहराई से जुड़ जाता है, उन्हें भी मृत्यु हमसे छीन लेती है। अंततः वह समय भी आता है जब हमें स्वयं मृत्यु का सामना करना पड़ता है।

संसार की सभी अनिश्चितताओं के बीच...

---

[1] यह व्याख्यान पंजाब के **फरीदकोट** के महाराजा साहिब के **पैलेस हॉल** में दिया गया था।

संसार की सभी अनिश्चितताओं के बीच केवल एक ही बात पूर्णतः निश्चित है—**मृत्यु**। जैसा कि श्रीकृष्ण ने कहा है—

"जो जन्मा है, उसकी मृत्यु निश्चित है।"

यदि हम इस संसार में आए हैं, तो यह भी निश्चित है कि एक दिन हमें इसे छोड़कर जाना होगा। हमें यह नहीं पता कि हम कब इस संसार से विदा होंगे, किस आयु में हमारी मृत्यु होगी। परंतु एक दिन मृत्यु अवश्य आएगी—इसमें संदेह की कोई छाया, कोई संभावना भी नहीं है।

अधिकांश लोग इस अटल सत्य से अपनी दृष्टि फेर लेते हैं। वे इसके बारे में सोचना नहीं चाहते और न ही इसे अपने सुख और आनंद के क्षणों में प्रवेश करने देना चाहते हैं। वे मृत्यु को अपनी आँखों से ओझल रखने का प्रयास करते हैं, क्योंकि वे नहीं चाहते कि उनके जीवन पर मृत्यु की छाया पड़ जाए।

किन्तु कभी-कभी ऐसा समय आता है जब वे इससे मुँह नहीं मोड़ सकते। जब मृत्यु स्वयं उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है; जब वह घर में प्रवेश करती है और परिवार के किसी अत्यंत प्रिय सदस्य को अपने साथ ले जाती है। तब मनुष्य, चाहे वह चाहे या न चाहे, मृत्यु के बारे में सोचने लगता है। तब वह स्वयं से पूछता है—

"यदि जीवन सुरक्षित ही नहीं है, तो उसके मूल्य का क्या अर्थ है?"

तभी उसके भीतर उस भावना का उदय होता है जिसे **वैराग्य** कहा जाता है—जीवन के प्रति एक प्रकार की विरक्ति। जीवन की निरंतर बदलती हुई वस्तुओं और सुखों से उसका मन ऊबने लगता है। उसके भीतर उस अपरिवर्तनशील, शाश्वत तत्व की खोज की इच्छा जागती है—उसकी, जो कभी नष्ट नहीं होता, जो कभी छूटता नहीं, और जो कभी निराश नहीं करता।

किन्तु यह वैराग्य प्रायः निष्क्रिय प्रकार का होता है। यह तभी उत्पन्न होता है जब मृत्यु इस प्रकार मनुष्य के सामने आ खड़ी होती है। समय बीतने के साथ ऐसा वैराग्य भी धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है।

यह वैराग्य आत्मा की वास्तविक भूख से उत्पन्न नहीं होता, बल्कि जीवन के प्रति अस्थायी विरक्ति और निराशा से जन्म लेता है। जो **सच्चा वैराग्य** स्थायी होता है और मनुष्य को ज्ञान की ओर ले जाता है, वह आत्मा की अपने वास्तविक स्वरूप की खोज की भूख है—**जीवात्मा** की **परमात्मा** के प्रति उत्कट आकांक्षा। एक बार जब यह भूख वास्तव में जाग उठती है, तो फिर कभी समाप्त नहीं होती, क्योंकि इसकी जड़ मनुष्य के

अस्तित्व की सबसे गहरी तहों में होती है। तब वह स्वयं को समस्त प्राणियों में विद्यमान उसी एक आत्मा के रूप में अनुभव करने की लालसा करता है।

जो वैराग्य बाहरी परिस्थितियों से उत्पन्न होता है—जो सांसारिक वस्तुओं से निराशा का परिणाम होता है, न कि मनुष्य के भीतर परमात्मा के प्रति गहन आकर्षण का—वह निराशा के कम होते ही प्रायः समाप्त भी हो जाता है। फिर भी, जब तक वह बना रहता है, तब तक वह जीवन के अनेक महान और महत्त्वपूर्ण पाठ सिखा सकता है। क्योंकि जब कुछ समय के लिए संसार की सुंदरता दुःख के बादलों से ढक जाती है और जीवन का आकर्षण फीका पड़ जाता है, तब मनुष्य के पास आत्मचिंतन का दुर्लभ अवसर होता है। बादल हट जाने पर संसार फिर पहले की तरह मनोहर प्रतीत होने लगता है। इसलिए जब दुःख का समय आए, तब मनुष्य को उसका लाभ उठाना चाहिए।

जब मृत्यु उसके मित्रों और प्रियजनों को उससे छीन ले, तब उसे उस अनुभव से कुछ ऐसे सत्य सीखने का प्रयास करना चाहिए जो उसके जीवन को दिशा दे सकें।

तब मनुष्य स्वयं से पूछता है—**जीवन क्या है और मृत्यु क्या है?** क्या हम इनके विषय में तथा मृत्यु के पार के जीवन के विषय में कुछ जान सकते हैं?

इतना तो लगभग निश्चित है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता। जब शरीर गिर जाता है, तब हमारा वास्तविक अस्तित्व नष्ट नहीं होता। परन्तु मृत्यु के उस पार क्या है? जब मृत्यु के हाथ हमारे शरीर को हमसे अलग कर देते हैं, तब हम किन परिस्थितियों में प्रवेश करते हैं? किन लोकों में पहुँचते हैं? वहाँ हमें किस प्रकार का जीवन प्राप्त होता है?

क्या इस संसार में कोई ऐसा है जो हमें मृत्यु के पार के जीवन के बारे में निश्चित रूप से बता सके? क्या कोई ऐसा है जो अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह बता सके कि शरीर त्यागने वालों की अवस्था कैसी होती है? उन्हें पुनः इस संसार में कौन लाता है? भौतिक जगत में उनका पुनर्जन्म किस नियम के अधीन होता है?

जन्म और मृत्यु का यह चक्र क्या है? यह वही चक्र है जिसे *जन्म-मृत्यु का चक्र* या *संसार का चक्र* कहा जाता है—जिससे हम सब बँधे हुए हैं और जिससे सहज रूप से मुक्त नहीं हो सकते।

यह निरंतर घूमता रहता है, हमें एक लोक से दूसरे लोक में ले जाता है और फिर वहाँ से किसी अन्य लोक में पहुँचा देता है।

हम तीन लोकों के बीच निरंतर विचरण करते रहते हैं। यही चक्र समस्त जन्मों और मृत्यु का संचालन करता है। वह कौन-सी शक्ति है जिसने जन्म और मृत्यु को इस क्रमबद्ध श्रृंखला में बाँध रखा है? क्या इस जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होना संभव है? क्या हम इन बंधनों को तोड़ सकते हैं ताकि हमें फिर कभी जन्म न लेना पड़े?

क्या कोई ऐसी शाश्वत अवस्था नहीं है, जहाँ पहुँचकर मनुष्य पूर्ण संतोष, अखंड शांति और ऐसा आनंद प्राप्त कर सके, जो कभी विचलित न हो और जिसका कभी अंत न हो?

यही वह प्रश्न है जिसे मनुष्य की आत्मा निरंतर दोहराती रहती है। आज रात्रि हम भी अपने विचारों में उसी प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास कर रहे हैं और यह देखने का प्रयत्न कर रहे हैं कि क्या प्राचीन ऋषियों की शिक्षाएँ इसका समाधान प्रस्तुत करती हैं।

हम इस प्रश्न का उत्तर उन महापुरुषों के ज्ञान के आधार पर देने का प्रयास करते हैं जिन्होंने इन महान सत्यों का अध्ययन किया और जिनका उपदेश ऋषियों ने दिया है। हम यह निश्चित

रूप से जानना चाहते हैं कि वे कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण मनुष्य बार-बार जन्म लेता है और बार-बार मृत्यु को प्राप्त होता है; और वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जिनके द्वारा वह जन्म और मृत्यु से मुक्त होकर उस शांति को प्राप्त कर सकता है जो न कभी बदलती है और न कभी समाप्त होती है।

अब हम इस प्रश्न के प्रथम भाग पर विचार करें—**जन्म और मृत्यु का क्रम**।

हम कह सकते हैं कि हममें से अधिकांश के लिए यही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, क्योंकि अभी हममें से अधिकांश जन्म और मृत्यु के चक्र से बाहर निकलने के लिए तैयार नहीं हैं। पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने से पहले बहुत कुछ करना शेष है, और हममें से अधिकांश को शाश्वत मुक्ति प्राप्त करने से पूर्व अनेक बार पुनर्जन्म लेना होगा।

फिर भी, उस मार्ग को जान लेना जिस पर अंततः हमें चलना है, अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि हम बंधन से मुक्त होना चाहते हैं, तो हमें यह जानना ही होगा कि उसके लिए क्या करना आवश्यक है।

मैंने अभी उन **तीन लोकों** का उल्लेख किया था जिनसे होकर मनुष्य जन्म से मृत्यु और मृत्यु से पुनः जन्म की यात्रा करता है। आइए, पहले **भौतिक लोक** (स्थूल संसार) पर विचार करें।

इसके विषय में अधिक विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसकी परिस्थितियों से हम सब परिचित हैं। परंतु एक तथ्य पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि यही तथ्य हमें उसी बंधन में डाल देता है जिससे हम मुक्त होना चाहते हैं।

वह तथ्य यह है कि **हम सब सुख की खोज में लगे हुए हैं।**

यदि गहराई से देखें, तो यही मनुष्य के जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। वह सदैव सुखी होना चाहता है। इसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु उसे पूर्ण संतोष नहीं दे सकती।

जब वह किसी वस्तु को प्राप्त करने का प्रयास करता है और उसमें सुख नहीं पाता, तब वह कहता है—

“मैंने भूल की। मैंने सुख पाने के लिए गलत मार्ग चुना। अब मैं कोई बेहतर मार्ग खोजूँगा।”

इस प्रकार वह बार-बार उसी विचार पर लौट आता है कि उसे सुख अवश्य प्राप्त करना है। उसके मन को किसी और वस्तु से वास्तविक संतोष नहीं मिल सकता।

यह स्वाभाविक है। हृदय की सुख की लालसा ईश्वर-प्रदत्त है। **ईश्वर (ईश्वर/ईश्वर)** ने हमारे भीतर सुख की आकांक्षा इसलिए रखी है कि उसी आकांक्षा के माध्यम से अंततः हम उसी में विश्राम और परम शांति प्राप्त करें।

आरंभ में मनुष्य भौतिक वस्तुओं में सुख खोजने का प्रयास करता है। यही लगभग सभी मनुष्यों का सामान्य अनुभव है। शरीर, जब उसकी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं, तो वह हम पर अनेक प्रकार के आग्रह करता है। शरीर स्वभाव से लोभी और संग्रह करने वाला है। उसे भोजन की इच्छा होती है, पेय की इच्छा होती है, काम-सुख की इच्छा होती है, और अनेक अन्य भोगों की भी। शरीर सदैव किसी-न-किसी वस्तु को प्राप्त करना चाहता है।

इसी कारण मनुष्य सबसे पहले शरीर में ही सुख खोजने का प्रयास करता है, क्योंकि शरीर सबसे अधिक बलपूर्वक उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है।

किन्तु वह यह नहीं समझता कि शरीर की ये तीव्र इच्छाएँ कुछ समय बाद स्वयं ही समाप्त हो जाती हैं। वह उनके आगे झुक

जाता है। जब उसे भोजन की तीव्र इच्छा होती है, तो वह आवश्यकता से अधिक खा लेता है। वह लोभवश अति कर बैठता है। जब उसमें काम-वासना प्रबल होती है, तब भी वह संयम खोकर अति में चला जाता है।

इसका परिणाम क्या होता है?

घृणा, अरुचि, बीमारी और अनेक प्रकार के रोग।

इसी प्रकार ईश्वर मनुष्य को यह शिक्षा देते हैं कि उसका वास्तविक सुख शरीर की लोभी इच्छाओं को संतुष्ट करने में नहीं है। शरीर की इच्छाओं की पूर्ति करने से वे समाप्त नहीं होतीं, बल्कि और अधिक बढ़ जाती हैं।

जितना अधिक मनुष्य पीता है, उतनी ही अधिक उसे पीने की इच्छा होती है। जितना अधिक वह खाता है, उतनी ही अधिक भूख बढ़ती जाती है। जितना अधिक वह इन्द्रिय-सुखों का भोग करता है, उसकी वासना उतनी ही प्रबल होती जाती है।

ठीक ही कहा गया है कि **अग्नि पर घी डालकर उसे बुझाना जितना असंभव है, उतना ही असंभव वासना को उसके भोग द्वारा शांत करना है।**

उस मार्ग में कभी भी वास्तविक सुख नहीं मिलता। इसलिए ईश्वर मानो मनुष्य से कहते हैं—

“तुम्हारा सुख शरीर में नहीं है। यदि तुम उसे वहीं खोजोगे, तो तुम्हें बार-बार निराशा ही मिलेगी। अंततः तुम्हें तृप्ति नहीं, बल्कि ऊब और अतिभोग का दुष्परिणाम ही प्राप्त होगा।”

तब मनुष्य ऐसे सुख की खोज करता है जो अधिक स्थायी और अधिक दीर्घकालिक हो। वह उसे **बौद्धिक आनंद** में ढूँढ़ने लगता है।

किन्तु कभी-कभी दुःख और शोक का प्रबल आघात बुद्धि का आकर्षण भी समाप्त कर देता है। तब उसका मन अध्ययन या चिंतन में नहीं लगता। और यदि वह इतना दृढ़ हो कि दुःख के बीच भी अध्ययन करता रहे, तब भी अंततः वृद्धावस्था आ जाती है। मस्तिष्क की शक्ति मंद पड़ने लगती है, विचारों की स्पष्टता कम हो जाती है, और वह पहले की तरह ठीक से सोच नहीं पाता।

इस प्रकार बौद्धिक सुख का भी अंत हो जाता है—यद्यपि यह सुख शरीर के भोगों से कहीं श्रेष्ठ और अधिक परिष्कृत होता है।

इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य अंततः पराजित होकर लौट आता है। तब स्वाभाविक रूप से वह सुख और आनंद को **आत्मा** में, **परमात्मा** में खोजने लगता है। केवल वहीं ऐसा आनंद है जिसमें न घृणा है, न ऊब और न ही निराशा। वहीं ऐसा सुख प्राप्त होता है जो वासना और तृष्णा के स्पर्श से परे है। वहीं वह अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ एकत्व में अनुभव करता है और उस दिव्य जीवन तथा प्रेम के वरदानों का सहभागी बनता है, जो उसी परम स्रोत से प्रवाहित होते हैं।

अब आइए उस मनुष्य की मृत्यु के बाद की यात्रा का अनुसरण करें, जिसने अपने जीवन में मुख्यतः शरीर के सुखों की ही खोज की थी।

जब मृत्यु शरीर को उससे अलग कर देती है, तब वह अपने आनंद के साधन के रूप में शरीर का उपयोग नहीं कर सकता। अब मैं आपको स्पष्ट रूप से बताती हूँ कि मृत्यु के बाद मनुष्य किस प्रकार दूसरे लोक में प्रवेश करता है।

हम दो उदाहरण लेते हैं। पहला उस व्यक्ति का, जो अपना सारा सुख शरीर के भोगों में खोजता है; और दूसरा उस व्यक्ति का, जो शरीर के प्रति संयमी और संतुलित है तथा अपनी प्रसन्नता

भावनाओं की पवित्र अभिव्यक्ति और बुद्धि के विकास में प्राप्त करता है।

मृत्यु के बाद इन दोनों व्यक्तियों की अवस्था कैसी होगी?

दोनों ही दो लोकों से होकर गुजरते हैं, परंतु उन लोकों में उनकी स्थिति एक-दूसरे से अत्यंत भिन्न होती है।

पहला व्यक्ति अपने साथ उन सभी वासनाओं को लेकर जाता है जिन्हें उसने जीवन भर शरीर के माध्यम से तृप्त किया था। मृत्यु के तुरंत बाद वह कुछ समय तक अचेत रहता है, मानो गहरी नींद में सोया हुआ हो।

जब वह जागता है, तो स्वयं को उस लोक में पाता है जिसे **प्रेतलोक** (*Preta Loka*) कहा जाता है—अर्थात् उन लोगों का लोक जो शरीर छोड़ चुके हैं। इसे कभी-कभी **कामलोक** (*Kāma Loka*) या **इच्छाओं का लोक** भी कहा जाता है।

जागने पर उसे सबसे पहले यह अनुभव होता है कि जिन इच्छाओं को उसने पृथ्वी पर रहते हुए बार-बार पोषित किया था, वे अब भी पूरी तरह जीवित हैं और अपनी पूर्ववत् तृप्ति की माँग कर रही हैं।

यदि वह व्यक्ति भोजन, मद्यपान या स्त्री-संग का अत्यधिक आसक्त था, तो मृत्यु के बाद भी वही इच्छाएँ उसके भीतर उठती हैं। किंतु अब उसके पास जो शरीर है, वह उन इच्छाओं की पूर्ति करने में सर्वथा असमर्थ है।

इस शरीर को कभी-कभी **सूक्ष्म शरीर** कहा जाता है। यही वास्तव में जीवात्मा के लिए एक प्रकार का कारागार बन जाता है। जीवात्मा उसमें उसी प्रकार बंद रहती है जैसे कोई कैदी जेल में बंद रहता है।

यह कारागार किसी बाहरी पदार्थ से नहीं बना होता, बल्कि उन्हीं वासनाओं और तृष्णाओं से निर्मित होता है जिन्हें उसने अपने भौतिक जीवन में निरंतर पोषित और तृप्त किया था। बार-बार उन्हें संतुष्ट करने के कारण वे अत्यंत शक्तिशाली हो गई थीं।

वास्तव में ये वासनाएँ स्थूल शरीर की नहीं होतीं। स्थूल शरीर तो केवल उनका साधन होता है। इच्छाएँ और वासनाएँ बाहरी शरीर में नहीं रहतीं; उनका वास्तविक निवास उस **काममय शरीर** (इच्छाओं के सूक्ष्म शरीर) में होता है। वहीं उनकी जड़ें और केंद्र स्थित होते हैं, और वे अपनी तृप्ति के लिए भौतिक शरीर का उपयोग करती हैं।

इन्हीं इच्छाओं की पूर्ति के लिए **कर्मेन्द्रियाँ** कार्य करती हैं। यही वे इन्द्रियाँ हैं जिनके माध्यम से मनुष्य अपनी वासनाओं को संतुष्ट करता है और अपनी तृष्णाओं को निरंतर पोषण देता है।

इस प्रकार संपूर्ण भौतिक जीवन इन्द्रियों की इच्छाओं को तृप्त करने में ही लगा रहता है।

ऐसे मनुष्य की इन्द्रियाँ मृत्यु के बाद भी अत्यंत प्रबल बनी रहती हैं और उसी के कारण वे जीवात्मा को मानो बंधक बना लेती हैं। जीवात्मा उन भोगों की लालसा करती रहती है जिनका वह भौतिक संसार में आनंद लेती थी, परन्तु अब वे उपलब्ध नहीं होते। यही अभाव उसे मृत्यु के बाद अत्यंत दुःखी बना देता है।

वह जिन सुखों की इच्छा करता है, वे केवल इस भौतिक संसार में ही प्राप्त हो सकते हैं। मृत्यु के बाद वह उन्हें प्राप्त नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप वह तीव्र इन्द्रिय-वासनाओं से पीड़ित रहता है, परंतु उन्हें संतुष्ट करने का कोई साधन उसके पास नहीं होता।

यही उस मनुष्य की अवस्था होती है जिसने अपने जीवनभर अपनी इच्छाओं और वासनाओं को निरंतर तृप्त किया हो और

अंततः वह शरीर, जो उन इच्छाओं की पूर्ति का एकमात्र साधन था, मृत्यु द्वारा उससे छीन लिया जाए।

उसकी स्थिति उस भूखे व्यक्ति के समान होती है जिसे किसी मजबूत खंभे से बाँध दिया गया हो और उसके सामने भोजन की थाली रख दी गई हो। वह भोजन को देख सकता है, उसकी तीव्र इच्छा भी करता है, परंतु बंधन के कारण उसे प्राप्त नहीं कर सकता।

इसी प्रकार की लोभ, तृष्णा और दुःख से भरी अवस्था में वह मनुष्य मृत्यु के बाद पहुँचता है जिसने अपना जीवन केवल इन्द्रिय-भोगों में बिताया हो। इन्द्रियाँ और उनकी इच्छाएँ तो बनी रहती हैं, परंतु उन्हें संतुष्ट करने का साधन समाप्त हो जाता है। मृत्यु केवल शरीर को छीनती है; इन्द्रिय-वासनाएँ नहीं मिटाती।

यदि कोई विवेकशील मनुष्य इस सत्य को समझ ले, तो वह ऐसा जीवन नहीं जिएगा जिससे मृत्यु के बाद उसे इस प्रकार का दुःख भोगना पड़े।

इस जीवन में भी आप केवल इसलिए विष नहीं पीते कि उसका स्वाद मीठा है। आप इतना मूर्खतापूर्ण कार्य नहीं करेंगे। आप कहेंगे—

"मैं ऐसी वस्तु क्यों ग्रहण करूँ जो बाद में मुझे भयंकर पीड़ा दे?"

तो फिर ऐसी वासनाओं को क्यों बढ़ाया जाए, जो मृत्यु के बाद केवल आपको यातना ही देंगी? उन्हें पोषित करने के स्थान पर उनका संयम करना चाहिए, क्योंकि अंततः उनकी तृप्ति संभव नहीं होगी।

मैंने अनेक बार लोगों से ये बातें कही हैं। मैं इन्हें केवल इसलिए नहीं जानती कि मैंने इन्हें पवित्र ग्रंथों में पढ़ा है, बल्कि इसलिए कि मुझे इन्हें प्रत्यक्ष देखने का अभ्यास कराया गया है।

ऐसे लोगों को इस प्रकार कष्ट सहते देखना अत्यंत दुःखद होता है। स्वाभाविक रूप से उनके प्रति करुणा उत्पन्न होती है, किंतु उनकी सहायता भी सीमित ही की जा सकती है, क्योंकि वे स्वयं अपने कर्मों द्‌वारा यह कर्मफल निर्मित कर चुके होते हैं।

जिन लोगों ने जीवनभर इन्द्रियों के अधीन होकर जीवन बिताया, वे मृत्यु के बाद उसी कारण से इस प्रकार का कष्ट भोगते हैं।

फिर भी, जो लोग अभी शरीर में हैं, वे **प्रेतलोक** में स्थित ऐसे प्राणियों की कुछ सहायता कर सकते हैं। इसी उद्देश्य से **श्राद्ध** करने की शिक्षा दी गई है। श्राद्ध का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि दिवंगत आत्मा को सहायता मिले ताकि वह प्रेतलोक से आगे बढ़कर **स्वर्गलोक** की ओर जा सके।

श्राद्ध में जिन **मंत्रों** का उच्चारण किया जाता है, उनका एक सूक्ष्म प्रभाव माना गया है। प्रत्येक ध्वनि वातावरण में कंपन उत्पन्न करती है। ये कंपन सूक्ष्म पदार्थ में तरंगें उत्पन्न करते हैं। जब ये तरंगें उस सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालती हैं, तो वे उसके बंधनों को धीरे-धीरे शिथिल और विघटित करने में सहायता करती हैं, जिससे जीवात्मा आगे की यात्रा के लिए अधिक स्वतंत्र हो सके।

इसे मैं भौतिक संसार के एक सरल उदाहरण से समझाती हूँ।

मान लीजिए कि सैनिकों का एक दल एक साथ कदम मिलाकर मार्च कर रहा है। जब वे नियमित रूप से एक समान कदम रखते हुए आगे बढ़ते हैं, तो उससे शक्तिशाली कंपन उत्पन्न होते हैं। यदि ऐसे सैनिकों को किसी ऐसे पुल से होकर गुजरना हो जो बहुत मजबूत न हो, तो आप जानते होंगे कि उनका

अधिकारी उन्हें आदेश देता है कि वे कदम मिलाकर न चलें, बल्कि अनियमित ढंग से चलकर पुल पार करें।

ऐसा क्यों?

क्योंकि यदि सभी सैनिक एक साथ नियमित ताल में चलते रहें, तो उनके कदमों से उत्पन्न कंपन इतने प्रबल हो सकते हैं कि पुल टूट जाए।

नियमित और समवेत गति से उत्पन्न होने वाले कंपन किसी वस्तु पर अत्यंत शक्तिशाली प्रभाव डाल सकते हैं।

इसी प्रकार, **मंत्रों** के उच्चारण से भी नियमित और शक्तिशाली सूक्ष्म कंपन उत्पन्न होते हैं। ये कंपन उस सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालते हैं जो जीवात्मा को बंधन में रखता है और उसके बंधनों को शिथिल तथा विघटित करने में सहायता करते हैं। इसी कारण **श्राद्ध** का अनुष्ठान किया जाता है और उसमें मंत्रों का जप कराया जाता है।

किन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि यह अनुष्ठान उचित रीति से सम्पन्न हो।

श्राद्ध कराने वाला **पुरोहित** विद्वान और पवित्र आचरण वाला होना चाहिए। यदि उसका जीवन शुद्ध न हो, तो वह मंत्रों में बहुत कम आध्यात्मिक शक्ति संचारित कर सकता है।

जो व्यक्ति अज्ञानी, अशिक्षित अथवा अपवित्र जीवन वाला है, उसके द्वारा मंत्रोच्चारण में वह प्रभाव उत्पन्न नहीं होता। इसलिए यदि श्राद्ध किसी अयोग्य पुरोहित द्वारा कराया जाए, तो उसका लाभ अपेक्षाकृत बहुत कम होता है।

इसके विपरीत, यदि पुरोहित विद्वान और चरित्रवान हो, तो आप अपने दिवंगत मित्रों और संबंधियों के लिए वास्तव में एक महान उपकार करते हैं। इससे उन्हें उस सूक्ष्म बंधन से मुक्त होने में सहायता मिलती है जिसमें वे बँधे हुए हैं।

अब उस मनुष्य पर विचार कीजिए जिसने अपने भौतिक जीवन में शारीरिक वासनाओं के आगे आत्मसमर्पण नहीं किया और जो मृत्यु के बाद **प्रेतलोक** अथवा **कामलोक** में पहुँचता है।

उसके साथ क्या होता है?

उसने मृत्यु से पहले ही अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। उन्हें संयमित करके उसने उनकी शक्ति क्षीण कर दी थी।

फलस्वरूप, उस सूक्ष्म कारागार के निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री ही बहुत कम बचती है।

जैसे ईंट और मिट्टी के बिना घर नहीं बनाया जा सकता, वैसे ही मृत्यु के बाद वासनाओं का वह बंधन भी तब नहीं बन सकता, जब मनुष्य ने अपने जीवन में वासनाओं को पोषित ही न किया हो।

इसका परिणाम यह होता है कि जब ऐसा संयमी मनुष्य शरीर त्यागता है, तो उसके पास अत्यंत शुद्ध और हल्का सूक्ष्म शरीर होता है। उस शरीर के बंधन आसानी से टूट जाते हैं और वह शीघ्र ही उच्चतर तथा अधिक शुद्ध लोक की ओर अग्रसर हो जाता है।

वह **प्रेतलोक** से बहुत शीघ्रता से गुजर जाता है। वहाँ उसे न रोका जाता है, न उसे किसी प्रकार का कष्ट सहना पड़ता है।

उसने ऐसा सूक्ष्म शरीर निर्मित किया होता है जो उसे पीछे खींचने के बजाय आगे बढ़ने में सहायता करता है। इसलिए वह बिना किसी दुःख, बाधा या पीड़ा के सहज और आनंदपूर्वक आगे बढ़ता है और अंततः **स्वर्गलोक** में—देवताओं की संगति में, आनंदमय लोक में—पूर्ण चेतना प्राप्त करता है।

अब यहाँ **बुद्धि** (विवेक) का महान महत्त्व सामने आता है।

जिस मनुष्य ने अपनी बुद्धि का विकास किया है, अपने श्रेष्ठ और कोमल भावों को संवारा है, अपने आसपास के लोगों के प्रति बहुत भलाई की है, जो दयालु, सौम्य और न्यायप्रिय रहा है—उसे मृत्यु के बाद उसके सभी शुभ कर्म, शुभ विचार और शुभ भावनाएँ उसकी प्रतीक्षा करती हुई मिलती हैं।

ये सभी मिलकर उसके चारों ओर एक सुंदर **स्वर्गीय शरीर** का निर्माण करती हैं, जिसके माध्यम से वह स्वर्गलोक के समस्त आनंदों का अनुभव करता है।

उसके पूर्वजन्म अथवा पिछले जीवन के सभी पुण्य—उसके अच्छे कर्म, श्रेष्ठ इच्छाएँ और पवित्र विचार—मिलकर उसके **स्वर्ग-शरीर** का निर्माण करते हैं। उसी शरीर के द्वारा वह स्वर्गलोक के दिव्य सुखों का उपभोग करने में समर्थ होता है।

इसी प्रकार का शरीर आपको अभी, इसी जीवन में निर्मित करना चाहिए, ताकि मृत्यु के बाद वह आपके लिए तैयार मिले और आपकी आगे की यात्रा का साधन बन सके।

आप इस शरीर का निर्माण करते हैं—

- शुभ इच्छाओं द्वारा,
- सदाचार का संकल्प लेकर,
- उच्च और महान आकांक्षाओं द्वारा,
- दूसरों का भला करने के प्रयास से,
- तथा पवित्र और कल्याणकारी विचारों द्वारा।

आप शायद नहीं जानते कि **विचार कितने शक्तिशाली होते हैं।**

जब भी आप कोई शुभ विचार करते हैं, तब आप एक सुंदर सूक्ष्म रूप का निर्माण करते हैं। वह रूप आपके जीवनभर आपके निकट रहता है और आपको **सत्कर्म के मार्ग** पर आगे बढ़ने में सहायता करता है।

इसलिए आपको प्रतिदिन अपने जीवन का कुछ समय अच्छे विचारों के लिए अवश्य निकालना चाहिए। प्रातःकाल, पूजा करने के बाद, कुछ समय शांत बैठकर उत्तम बातों का चिंतन करें। अपने मन को पवित्र, सत्य और दिव्य विषयों में लगाएँ।

इस प्रकार आप ऐसा सूक्ष्म शरीर निर्मित करेंगे जो मृत्यु के बाद आपकी प्रतीक्षा करेगा और आपको **स्वर्गलोक** तक ले जाएगा।

प्रतिदिन ध्यान के माध्यम से अपने भीतर कुछ दृढ़ और श्रेष्ठ विचार स्थापित कीजिए। तब जब मृत्यु का क्षण आएगा, वही पवित्र विचार आपको उस लोक की ओर ले जाएँगे जिससे उनका संबंध है।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि मनुष्य मृत्यु के समय जिस भाव या विचार में स्थित होता है, मृत्यु के पश्चात् उसी के अनुरूप लोक को प्राप्त करता है।

स्वर्गीय शरीर में मनुष्य उतने ही समय तक रहता है, जितनी अवधि तक वह शरीर, जिसे उसने अपने शुभ कर्मों और विचारों से निर्मित किया है, टिक सकता है।

आपने उसमें जितना अधिक पुण्य, सद्भाव और श्रेष्ठता संचित की होगी, उतना ही अधिक समय आपका स्वर्गलोक का जीवन होगा।

अंततः प्रकृति का शाश्वत नियम यही है कि मनुष्य को वही प्राप्त होता है, जिसका निर्माण उसने स्वयं अपने जीवन में किया है।

ऋषियों ने सदैव यह शिक्षा दी है कि **यज्ञ** अथवा **त्याग** के द्वारा मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति करता है। यह केवल प्रतीकात्मक कथन

नहीं, बल्कि शाब्दिक रूप से भी सत्य है। जो मनुष्य त्याग करता है, वह अपने त्याग के फलस्वरूप स्वर्ग का आनंद प्राप्त करता है।

मनुष्य जो कुछ भी त्यागपूर्वक अर्पित करता है, वह किसी-न-किसी रूप में उसके पास लौटकर अवश्य आता है।

इस संसार में मनुष्य धन देकर रत्न खरीदता है, भूमि खरीदता है, महल बनवाता है और अनेक प्रकार की विलास-वस्तुएँ प्राप्त करता है। इन सबके लिए धन खर्च करने में उसे कोई संकोच नहीं होता। किंतु ये सभी वस्तुएँ केवल थोड़े समय का सुख देती हैं। सुख समाप्त होते ही उनका आकर्षण भी समाप्त हो जाता है; अंततः कुछ भी शेष नहीं रहता।

परंतु जब ईश्वर के लिए कुछ अर्पित करने की बात आती है, तब मनुष्य प्रायः संकोच करता है।

देवता उससे ऐसे यज्ञ और त्याग की अपेक्षा करते हैं जो दूसरों के जीवन को अधिक सुखी बनाएँ—जैसे कुएँ खुदवाना, वृक्ष लगवाना तथा ऐसे सभी कार्य करना जिनसे समाज और अन्य लोगों का कल्याण हो।

तब न्यायप्रिय देवता उसी त्याग का प्रतिफल मनुष्य को स्वर्गीय जीवन में लौटाते हैं।

जितना अधिक मनुष्य निःस्वार्थ भाव से त्याग करता है, उतना ही अधिक उसका स्वर्गीय जीवन दीर्घ और आनंदमय होता है।

यह प्रकृति का नियम है कि मनुष्य को उसी स्थान पर जन्म लेना पड़ता है जहाँ उसकी इच्छाओं की पूर्ति संभव हो।

एक **उपनिषद्** में कहा गया है कि मनुष्य अपनी इच्छाओं के अनुसार एक लोक से दूसरे लोक की ओर आकर्षित होता है।

चूँकि अधिकांश मनुष्यों की इच्छाएँ इसी भौतिक संसार से जुड़ी होती हैं, इसलिए वे शीघ्र ही पुनः इसी संसार में लौट आते हैं। उनका पुनर्जन्म अपेक्षाकृत जल्दी हो जाता है।

पुनर्जन्म तीन बातों से नियंत्रित होता है—

1. पिछले जन्म के कर्म,
2. पिछले जन्म की इच्छाएँ,
3. पिछले जन्म के विचार।

मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि इनका एक भाग **कामलोक** और **स्वर्गलोक** में फलित हो जाता है। इन दोनों लोकों में उनके कर्मों,

इच्छाओं और विचारों का कुछ अंश अपना परिणाम दे चुका होता है।

जो भाग अभी शेष रह जाता है, वही उसके अगले जन्म की परिस्थितियों और स्वरूप का निर्धारण करता है।

जब मनुष्य पुनर्जन्म लेता है, तब उसके **विचार** उसके उस **चरित्र** का निर्माण करते हैं जिसके साथ वह इस संसार में जन्म लेता है।

आपने देखा होगा कि जन्म लेते ही बच्चों के स्वभाव एक-दूसरे से कितने भिन्न होते हैं।

दो छोटे-छोटे बच्चों को ही देखिए। एक बच्चा बहुत लोभी होता है, जबकि दूसरा निःस्वार्थ। एक अत्यंत क्रोधी और आवेशपूर्ण होता है, तो दूसरा शांत और कोमल। एक प्रेमपूर्ण और सहानुभूतिशील होता है, जबकि दूसरा उदासीन और कठोर।

यद्यपि वे अभी बहुत छोटे होते हैं, फिर भी उनके स्वभाव में इतना अंतर क्यों होता है?

क्योंकि ये वही चरित्र हैं जिन्हें उन्होंने अपने पूर्वजन्मों में स्वयं निर्मित किया था।

आप जानते हैं कि इस संसार में मनुष्य का सुख बहुत हद तक उसके चरित्र पर निर्भर करता है।

यदि किसी मनुष्य का चरित्र सत्यनिष्ठ, पवित्र और सौम्य नहीं है, तो वह चाहे कितना ही धनी, शक्तिशाली, कुलीन या राजकुमार क्यों न हो, फिर भी वह वास्तव में सुखी नहीं हो सकता।

अब समझिए कि आपका **चरित्र आपके विचारों से बनता है।**

जैसा आप सोचते हैं, वैसे ही आप बनते जाते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है—

"मनुष्य अपने विचारों से निर्मित होता है। जैसा वह सोचता है, वैसा ही बन जाता है।"

विचार केवल आपके लिए स्वर्ग का शरीर ही नहीं बनाते, बल्कि वही आपके अगले जन्म का चरित्र भी गढ़ते हैं।

यदि आपके विचार महान, उदात्त और पवित्र होंगे, तो अगले जन्म में भी आपका चरित्र वैसा ही महान होगा।

यदि आपके विचार निकृष्ट, स्वार्थपूर्ण और अधम होंगे, तो आपका अगला जन्म भी उसी प्रकार के चरित्र के साथ होगा।

यही प्रकृति का अटल नियम है, जिसे कोई बदल नहीं सकता।

अब तीसरी बात है—**इच्छाएँ।**

आपकी वर्तमान इच्छाएँ यह निर्धारित कर रही हैं कि अगले जन्म में आपको किस प्रकार की वस्तुएँ और परिस्थितियाँ प्राप्त होंगी।

यदि आपको धन की तीव्र इच्छा है, तो अगले जन्म में धन प्राप्त हो सकता है।

यदि आपको सत्ता और अधिकार की तीव्र लालसा है, तो अगले जन्म में वह भी प्राप्त हो सकता है।

किन्तु सावधान रहिए कि आप क्या चुनते हैं।

धन और ऊँचा पद हमेशा सुख नहीं देते।

अब मैं आपको एक ऐसे व्यक्ति की कहानी सुनाती हूँ जिसका जीवन अत्यंत विचित्र था।

वह व्यक्ति प्रारम्भ में बहुत गरीब था। बाद में वह एक ठेकेदार बना और धीरे-धीरे अत्यधिक धनवान हो गया।

उस व्यक्ति का प्रत्येक कार्य सफल होता था। वह जिस भी व्यापार या निवेश में हाथ डालता, उसमें उसे लाभ ही लाभ होता। धीरे-धीरे उसने इतना धन एकत्र कर लिया कि उसके पास लाखों और करोड़ों रुपये हो गए।

उसने रहने के लिए एक भव्य महल बनवाया और उसे अत्यंत शानदार ढंग से सजाया। परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि वह स्वयं उस महल में नहीं रहता था। वह गाँव के एक छोटे-से घर में रहने लगा।

इतनी अपार संपत्ति होने पर भी वह अत्यंत दुःखी और निराश था। उसके बच्चे उसकी उपेक्षा करते थे, उसकी पत्नी का देहांत हो चुका था और उसके सभी संबंधी उससे घृणा करते थे।

अपार धन-संपत्ति के बीच भी वह अत्यंत दुखी जीवन जी रहा था। वह केवल एक नौकर के साथ एक साधारण-सी झोपड़ी में रहता था और एक भयंकर रोग से पीड़ित था।

उसका पूर्वजन्म कैसा था?

वह ऐसा व्यक्ति था जिसकी एकमात्र आकांक्षा धन थी—सिर्फ धन, धन और धन।

कर्म का नियम न्यायपूर्ण है। इसलिए उसे अगले जन्म में वही मिला जिसकी उसने तीव्र इच्छा की थी—अत्यधिक धन।

किन्तु उसने अपने पिछले जीवन में जो चरित्र बनाया था, वह अत्यंत स्वार्थी था। वह सदैव धन बटोरने में लगा रहा और धन प्राप्त भी कर लिया, पर उसका सदुपयोग कभी नहीं किया।

फलस्वरूप इस जन्म में उसे धन तो भरपूर मिला, परंतु वह उसी धन के बीच अत्यंत दुःखी जीवन जीने के लिए विवश हुआ।

अब कर्मों के प्रभाव पर विचार कीजिए।

यदि इस जीवन में आप दूसरों को शारीरिक सुख और सुविधा प्रदान करते हैं, तो अगले जन्म में आपको भी वैसा ही शारीरिक सुख प्राप्त होगा।

यदि आप अपने आसपास के लोगों के जीवन में समृद्धि लाते हैं, तो आपके अपने जीवन में भी समृद्धि आएगी।

यदि आप दूसरों को सुख देना चाहते हैं, तो उसके लिए आपको स्वयं कुछ त्याग करना होगा।

मान लीजिए कोई अत्यंत धनी व्यक्ति जनता के उपयोग के लिए एक सुंदर उद्यान (पार्क) बनवाकर दान कर देता है।

यह वास्तव में एक श्रेष्ठ कर्म है, क्योंकि इससे असंख्य लोगों को शारीरिक सुख मिलता है। वे वहाँ शुद्ध वायु का आनंद लेते हैं, वृक्षों की छाया में विश्राम करते हैं और प्रकृति का सुख प्राप्त करते हैं।

दूसरों को दिया गया यह शारीरिक सुख भविष्य में उसी व्यक्ति के पास शारीरिक कल्याण के रूप में लौटकर आता है। लोगों को जो भी लाभ उससे मिला, उसका फल अंततः उसे स्वयं प्राप्त होता है।

किन्तु यदि वह **नैतिक और आंतरिक सुख** भी प्राप्त करना चाहता है, तो उसका दान निःस्वार्थ भावना से होना चाहिए।

यदि वह केवल लोगों का कल्याण करने की निष्काम इच्छा से यह कार्य करता है, तो वही निःस्वार्थता उसके चरित्र का अंग बन जाती है और भविष्य में उसे एक सच्चा सुखी मनुष्य बनाती है।

इसलिए मनुष्य को केवल अपने कर्मों का ही नहीं, बल्कि अपने **चरित्र** का भी निर्माण करना चाहिए। दोनों समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

फिर भी कर्मों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

यदि कोई मनुष्य दूसरों के साथ अन्याय करता है, तो **कर्म के नियम** के अनुसार भविष्य के किसी जन्म में वही अन्याय उसके अपने जीवन में लौटकर उसके सामने अवश्य आएगा।

यदि शक्ति का उचित उपयोग न किया जाए, यदि उसका प्रयोग दूसरों पर अत्याचार करने और उन्हें कष्ट पहुँचाने के लिए किया जाए, तो ऐसा कठोर शासक अगले जन्म में स्वयं अत्याचार का शिकार होगा और अपने ही बोए हुए कर्मों का फल भोगेगा।

यही **कर्म का नियम** है, जो प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्मों के अनुसार फल देता है। जिस व्यक्ति के पास जितनी अधिक शक्ति और अधिकार होता है, उसकी जिम्मेदारी भी उतनी ही अधिक होती है।

ईश्वर कुछ लोगों को उच्च पदों पर स्थापित करते हैं ताकि वे जनता की दृष्टि में उनके प्रतिनिधि बनकर कार्य करें।

हिन्दू धर्म में सदैव यह शिक्षा दी गई है कि राजा अपनी प्रजा के लिए ईश्वर के समान होता है। वह ईश्वर की शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए उसका सम्मान और सेवा शासक के रूप में की जानी चाहिए।

किन्तु इसके बदले उसका कर्तव्य भी उतना ही महान है। उसे अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिए, न्याय स्थापित करना चाहिए, निर्धनों को धनवानों के अत्याचार से बचाना चाहिए तथा निर्बलों की रक्षा शक्तिशालियों के अन्याय से करनी चाहिए।

निर्बल को उसमें अपना सशक्त रक्षक दिखाई देना चाहिए।

महाभारत में कहा गया है कि **निर्बलों और पीड़ितों के आँसू अंततः शक्तिशाली के सामर्थ्य को भी नष्ट कर देते हैं।**

यही ईश्वर का न्याय है।

ईश्वर ही राजाओं के भी राजा हैं और पृथ्वी के सभी शासकों के परम नियंता हैं। वे प्रत्येक शासक से उसके अन्याय का हिसाब लेते हैं—चाहे वह अन्याय लापरवाही से हुआ हो, अन्यायी कानूनों के माध्यम से हुआ हो अथवा मनमानी और स्वेच्छाचारिता के कारण हुआ हो।

जिसके पास जितनी अधिक सत्ता है, उसे उतना ही अधिक यह स्मरण रखना चाहिए कि उसके ऊपर भी एक सर्वोच्च सत्ता है, जिसके प्रति वह उत्तरदायी है।

यही जन्म और मृत्यु का नियम है।

यही वह चक्र है जिससे होकर आत्मा अपनी यात्रा पूरी करती है।

किन्तु इस जन्म-मृत्यु के चक्र के विषय में एक और बात कहना शेष है।

हम सदैव इसी चक्र में घूमते रहने के लिए उत्पन्न नहीं हुए हैं। हमें हमेशा जन्म लेते रहना, मरते रहना और फिर जन्म लेना नहीं है।

एक समय ऐसा आता है जब आत्मा इस निरंतर आवागमन से थक जाती है और इससे मुक्त होना चाहती है। तब वह मुक्ति का मार्ग पूछती है।

आपको **नचिकेता** की कथा स्मरण होगी।

जब उसके पिता यज्ञ कर रहे थे, तब नचिकेता ने उनसे पूछा— **"आप मुझे किसे दान देंगे?"**

क्रोधित होकर पिता ने उत्तर दिया—**"मैं तुझे मृत्यु को दे देता हूँ।"**

तब नचिकेता मृत्यु के देवता **यम** के लोक में पहुँचा। वहाँ वह तीन दिन और तीन रात बिना किसी आतिथ्य के प्रतीक्षा करता रहा, क्योंकि उस समय यम वहाँ उपस्थित नहीं थे।

जब यम लौटे और उन्होंने देखा कि एक बालक अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए तीन दिन से उनके द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है, तो उन्होंने अपने आतिथ्य के अभाव की क्षतिपूर्ति के लिए उसे तीन वरदान देने का निश्चय किया।

पहले वरदान में नचिकेता ने प्रार्थना की कि उसके पिता पुनः उससे प्रसन्न हो जाएँ।

दूसरे वरदान में उसने उस दिव्य अग्नि-विद्या का ज्ञान माँगा जो स्वर्ग की प्राप्ति कराती है। यम ने उसे वह ज्ञान प्रदान किया और कहा कि वह अग्नि आगे चलकर **नचिकेता अग्नि** के नाम से प्रसिद्ध होगी।

तीसरे वरदान में नचिकेता ने कहा—

“कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य अमर है, और कुछ कहते हैं कि मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता। हे मृत्यु! मुझे अपना रहस्य बताइए। क्या मनुष्य आपकी सत्ता से मुक्त हो सकता है?”

यम ने कहा—

“यह मत पूछो।”

फिर उन्होंने कहा—

“कोई दूसरा वर माँग लो। मैं तुम्हें पृथ्वी का अपार धन दूँगा, दीर्घायु दूँगा, समस्त भोग दूँगा। परन्तु मृत्यु का रहस्य मत पूछो।”

किन्तु नचिकेता ने उत्तर दिया—

“आप पृथ्वी के सुख अपने पास रखिए, स्वर्ग के सुख भी अपने पास रखिए। स्वर्ग की अप्सराएँ, उनका नृत्य और उनका संगीत भी आप ही रखें। मुझे केवल एक ही वर चाहिए—यह बताइए कि मनुष्य आपकी पकड़ से कैसे मुक्त हो सकता है?”

ऐसी दृढ़ जिज्ञासा के सामने यम को उत्तर देना पड़ा।

उन्होंने कहा कि मनुष्य **इच्छाओं** से बँधा हुआ है।

इच्छाएँ इन्द्रियों से उत्पन्न होती हैं।

यही इच्छाएँ उसे जन्म से जन्म और मृत्यु से मृत्यु तक ले जाती रहती हैं।

इसलिए पहला कदम यह है कि मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे।

इन्द्रियाँ ही उसे जन्म और मृत्यु के बंधन में बाँधती हैं। अतः उसे चाहिए कि वह इन्द्रियों को मन के अधीन कर दे और उन पर संयम स्थापित करे।

यम ने शरीर की तुलना एक **रथ** से की।

- शरीर रथ है।
- इन्द्रियाँ उसके घोड़े हैं।
- मन उसकी लगाम है।
- शुद्ध विवेक अर्थात् **बुद्धि** उसका सारथी है।
- और **आत्मा** उस रथ में विराजमान स्वामी है।

शुद्ध बुद्धि को सारथी बनकर मनरूपी लगाम के द्वारा इन्द्रियरूपी घोड़ों को नियंत्रित करना चाहिए। यदि उन्हें स्वतंत्र

छोड़ दिया जाए, तो वे विषयों की ओर दौड़ पड़ते हैं और पूरे रथ को भी अपने साथ खींच ले जाते हैं।

उन्हें उचित मार्ग पर चलाना आवश्यक है।

मनुष्य को शुद्ध विवेक द्वारा अपने मन को शांत और नियंत्रित करना चाहिए, जैसे वह इन्द्रियों को नियंत्रित करता है।

प्रत्येक कर्म में उसे इन्द्रियों पर संयम और मन पर शासन रखना चाहिए।

जब यह साधना सफल होने लगती है, तब मन की शांति में मनुष्य आत्मा का दर्शन करने लगता है।

इसके बाद उसे **योग** का अभ्यास करना चाहिए।

उसे उस **एक**, **शाश्वत**, हृदय-गुहा में स्थित **आत्मा** का ध्यान करना चाहिए।

जो हृदय की गुहा में निवास करता है, साधक को अपना मन उसी में स्थिर करना चाहिए।

शरीररूपी नगर के भीतर स्थित उस सनातन पुरुष—**सच्चे पुरुष (पुरुषोत्तम)**—का ध्यान करना चाहिए।

उसका मन निर्मल, निर्भय और अचल होना चाहिए।

उसे **ज्ञान (ज्ञानयोग)** प्राप्त करना चाहिए—वह सच्चा ज्ञान जो आत्मा के स्वरूप का बोध कराए।

उसे **भक्ति** भी विकसित करनी चाहिए—वह भक्ति जो समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा का अनुभव कराती है।

इसी प्रकार मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है।

जब हृदय की सभी इच्छाएँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं, तब मन अमरता का अनुभव करता है।

और जब मन परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है, तब वह मृत्यु के मुख से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

यही वह रहस्य है जो बताया जा सकता है। मुक्ति का यही एकमात्र रहस्य है जिसे शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है।

पर प्रश्न यह है—**हम इसे कैसे प्राप्त करें? इसे कैसे सीखें?**

आज भी ऐसे **गुरु** विद्‌यमान हैं जो इसका उपदेश देते हैं। मृत्यु स्वयं मानो कहती है—

“महान गुरुओं की खोज करो और उनके चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण करो।”

वे आज भी जीवित हैं, आज भी शिक्षा दे रहे हैं और ऐसे साधकों की खोज में हैं जो वास्तव में सीखने के इच्छुक हों।

मैं आपसे वही कहती हूँ जिसे मैं स्वयं जानती हूँ।

वे उस **संकीर्ण मार्ग** (दुर्गम साधना-पथ) का उपदेश देते हैं जो आज भी खुला हुआ है—वह मार्ग जिसे **दिव्य ज्ञान**, **सनातन ज्ञान** अथवा **प्राचीन ज्ञान** कहा जाता है।

उनके अनुसार, यही ज्ञान आज भी **महान थियोसोफिकल सोसायटी** के माध्यम से आधुनिक संसार में उनके शिष्यों को सिखाया जा रहा है।

किन्तु यदि गुरु को पाना है, तो पहले साधक को स्वयं योग्य शिष्य बनना होगा।

तभी वह उन महानतम सत्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

परन्तु एक बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए—

आत्मा का साक्षात्कार इन्द्रिय-भोग में लिप्त या दुर्बल मनुष्य नहीं कर सकता।

मनुष्य केवल शब्दों से आत्मा को नहीं जान सकता।

वह केवल तर्क-वितर्क के द्वारा भी आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

आत्मा स्वयं उसी पर अपना स्वरूप प्रकट करती है जिसे वह योग्य समझती है।

और आत्मा की यह स्वीकृति किसी पक्षपात पर नहीं, बल्कि साधक के **जीवन की पवित्रता**, **निःस्वार्थता** और **आंतरिक शुद्धता** पर निर्भर करती है।

मुद्रित :
जे. आर. अरिया द्वारा, **वसन्त प्रेस**, अडयार, मद्रास।

अडयार पैम्फलेट्स (खंड 9)

97. **गूढ़ विद्या (Occultism)**
98. **भ्रातृत्व (Brotherhood)**
99. **मृत्यु के बाद का जीवन (Life After Death)**